शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

पूंजीवाद : नया साहित्य, नए विमर्श

सीमा मिश्रा (शोधार्थी)
हिन्दी विभाग
मुनीश्वर दत्त स्नातकोतर महाविद्यालय, अवध विश्वविद्यालय
प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

आधुनिक काल की आधुनिकता में लोकतंत्रीय चेतना का उदय जनजागरण, पुनर्जागरण, देश भक्ति और राष्ट्रीय चेतना के साथ होता है किन्तु 'नयी कविता और साठोत्तरी कविता' के समय से ही परम्परा को नकारने का जो क्रम शुरू हुआ 'नए विमर्श' उन्हीं की देन है। समकालीन हिन्दी साहित्य बदलती सांस्कृतिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव से उत्तरोतर जटिलतम सीमा तक पहुँच चुका है। साहित्य की अधुनातन विधाएं जीवन संघर्ष के लिए विवश हैं जो 'आम आदमी' को उसकी जमीन से बेदखल कर रहा है। आर्थिक उदारीकरण या वैश्वीकरण के साथ-साथ एक नए पूँजीवाद का उदय हुआ है जिसके कारण दलित मजदूर किसान तथा नगरों में कार्यरत श्रमिकों का जीवन संघर्ष तीव्रतर हो गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में समकालीन साहित्य में रचनाकारों द्वारा आमजन के जीवन संघर्सों के चित्रण की विवेचना का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना

आर्थिक उदारीकरण अथवा वैश्वीकरण के कारण जहाँ एक ओर समाज में सम्पन्नता व्याप्त होने से नए माध्यम एवं निम्न माध्यम वर्ग का उदय हो रहा है, वहीं गरीब और गरीब होता चला जा रहा है। अमीर और गरीब के बीच की खाई दिन-प्रतिदिन बढती ही जा रही है। वैश्वीकरण के इस दौर में विश्व की संपूर्ण संपत्ति का बड़ा भाग मुट्ठीभर पूंजीपतियों के हाथ में है। पूँजीवाद के पक्षधर हमेशा इस बात पर जोर देते थे कि विकास के इस मॉडल में पूँजी का वितरण समाज के सभी वर्गों में समान रूप से धीरे-धीरे होता है जिसके कारण समाज से गरीबी दूर करने का यह सबसे उपयुक्त रास्ता है। किन्तु हाल की घटनाओं से पूंजीवादी पक्षधरों की इन दलीलों का खंडन ही हुआ है। ये सही है कि पूंजीवाद के कारण विश्व में नव-धनाढ्यों का उदय हुआ है, किन्तु ये भी सही है कि इन नव-धनाढ्यों ने अपनी पूँजी को गरीबों में बंटने से बचाने के लिए अनेक प्रयास किये हैं। इन कुप्रयासों का एक उदाहरण हाल में प्रकाशित पनामा पपेर्स लीक[1] है जिसमें पाया गया कि विश्व के रइसों ने किस प्रकार अपनी संपत्ति बेनामी कंपनियाँ बनाकर छुपायी ताकि गरीबों तक ये न पहुँच सके।

नया साहित्य नए विमर्श

हिन्दी साहित्य में 'नयी कविता और साठोत्तरी कविता' के समय से ही रचनाकारों ने पूंजीवाद के पक्षकारों की दलीलों को नकारने का गंभीर प्रयास किया है। इन प्रयासों से जो क्रम शुरू हुआ 'नए विमर्श' उन्हीं की देन है। समकालीन हिन्दी साहित्य बदलती सांस्कृतिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव से उत्तरोत्तर जटिलतम सीमा तक पहुँच चुका है। साहित्य कि अधुनातन विधाएं जीवन संघर्ष के लिए विवश हैं

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जो 'आम आदमी' को उसकी जमीन से बेदखल कर रहा है। आर्थिक उदारीकरण या वैश्वीकरण के साथ-साथ एक नए पूँजीवाद का उदय हुआ है जिसके कारण दलित, मजदूर, किसान तथा नगरों में कार्यरत श्रमिकों का जीवन संघर्ष तीव्रतर हो गया है। समकालीन साहित्य में रचनाकारों द्वारा इन्हीं जीवन संघर्षों का उल्लेख किया गया है।

समकालीन साहित्यकारों ने इन समस्याओं को अपने समक्ष रखकर अपार ऐश्वर्य और अन्तहीन धनलिप्सा युक्त पूंजीपतियों के शोषण पर दृष्टि डालते हुए साहित्य की सर्जना की है। जिस प्रकार 'आमजन', मजदूर, दस्तकार और शिल्पकार संख्या में तो अधिक हैं किन्तु उनकी समस्या पर विचार करने वाले कम ही लोग हैं। उसी प्रकार आमजन की समस्याओं के साहित्यकार या तो कम हैं या उनके सर्जना के क्षेत्र को 'स्त्री विमर्श', 'दलित विमर्श' आदि प्रभावों से आगे उत्तर आधुनिकता ने इतना स्थान घेर लिया है कि आमजन और उनके समाज का चित्रण करने के लिए उनके पास समय नहीं है। इस निराशा, उलझन और द्वंद्वात्मकता को दरकिनार करके साहित्य सर्जना उत्तरोत्तर अपनी विकास यात्रा में अग्रसर हैं। डॉ.रमेश चन्द्र शाह लिखते हैं कि, "विडम्बना यह है कि विज्ञान और राजनीति के बडबोले दावों के बावजूद साहित्य और दर्शन का साक्ष्य देखें तो साफ दीखता है कि आज मनुष्य जितना अपनी अपर्याप्तता और लघुता के बोझ से ग्रस्त हो गया है उतना वह शायद पहले कभी नहीं था।" अज्ञेय ने कहा है - "मानव मात्र की आज की दीनावस्था क्या यांत्रिकी की विजय का परिणाम है, या कि दर्शन की पराजय का ? मानव क्या फिर दर्शन को उबार सकता है या कि दर्शन मानव को उबार सकेगा।"" इस कथन के आधार पर डॉ. शाह आगे कहते हैं कि उनमें (अज्ञेय में) आधुनिक मानव की इसी विडम्बना का एहसास हुआ है और उससे उबरने कि छटपटाहट भी।"[2]

डॉ. शाह का उपर्युक्त लेख 1989 के आस-पास छपा था और अज्ञेय की भवन्ती 1973-74 के आस-पास प्रकाशित हुई थी। जब दो-तीन दशक पहले से साहित्य की यह दशा रही है तो इक्कीसवीं शताब्दी के सातवें दशक से इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों की सर्जना का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। कविता के क्षेत्र में समकालीन कविता' के कथ्य में विद्यमान समस्याओं की विविधता, कहानी के क्षेत्र में 'नयी कहानी' आन्दोलन से आगे बढ़कर कथाकारों द्वारा सेक्स-कुण्ठा, वीमेन्स लिबर्टी 'लिव टुगेदर' एकाकीपन की जिन्दगी, तलाक, फ्री सेक्स जीवन, दहेज़ हत्या तथा शोषण के नए शिकंजों में जकड़ते जाने वाले मध्यम वर्गीय और निम्न मध्यम वर्गीय परिवारों की समस्यायें कई गुना बढ़ती गयी हैं। बढती बेरोजगारी को दूर करने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रवेश, शिक्षण संस्थाओं विशेषकर तकनीकी संस्थान, प्रबंधन संस्थान इंश्योरेंस कम्पनियों के कारोबार तथा धन संचय के साथ साथ शेयर मार्केट नित्य नयी समस्याओं के चंगुल में फँसाता जा रहा है। शासन द्वारा चलायी जाने वाली अनन्त योजनायें ऊँट के मुहँ में जीरा साबित हो रही हैं। फिर भी कथा-साहित्य, उपन्यास तथा कविताओं के संकलनों का प्रकाशन बदस्तूर जारी है। इन रचनाओं के आधार पर समीक्षक भी सृजनशीलता के उत्साह से आगे बढ़कर अपना मोर्चा संभालना चाह रहा है। इन्हीं समस्याओं से आक्रान्त साहित्य सर्जना का झुकाव नए विमर्शों की और हुआ है। साहित्य की इन विधाओं पर चर्चा न कर हम पहले समाज से सबसे अधिक जुड़े कथा

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

साहित्य की सर्जना और उसके नए विमर्शों पर दृष्टी डालना उपयुक्त मानते हैं।

हम यह जानते हैं कि साहित्य सर्जना का कथ्य, शिल्प-विधान, कथा भाषा या काव्य भाषा एक दिन में नहीं बदलती और यह भी जानते हैं कि 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' इसी प्रकार की सामाजिक समस्याओं की देन रही है। देश समाज और साहित्य की स्थिति-परिस्थिति को परिवर्तित करने वाले नए पूँजीवाद की इन साजिशों के विरुद्ध साहित्यकार या तो उन समस्याओं की अनदेखी करके युवा मन की आवेगमयी भावनाओं को सर्जना का वर्ण्य विषय बना रहे हैं जिसका एक रूप 'नयी कविता' 'नयी कहानी' आन्दोलन के रूप में शुरू हुआ था और दूसरा रूप इन समस्याओं से भी रूबरू हो रहा है। अब न तो परियों की कथा कहने का जमाना है और न उसके परिवर्तित रूप में प्रकाशित होने वाली कहानियों का ही किन्तु इस आग्रह को संकीर्णता की तरह स्वीकार करके व्यापक विषयों पर आधारित समाज परक समस्या की कहानियों को अंग्रेजों के शासन काल से ही भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तनों ने समाज के मध्यम आय वर्ग के लोगों की संख्या में बढ़ोतरी की। स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व हाईस्कूल, इंटरमीडीएट पढ़ कर अंग्रेजी जानने वाले व्यक्ति की नियुक्तियां संस्थानों में होने लगी, किन्तु औद्योगिक क्षेत्रों में नौकरी न पाने वाले युवक-युवतियां अनेक नशे की शिकार हुई। इस तरह के 'नशे' के आड़ में चोरी, लूट, डकैती, जहर खुरानी समाज में फलने-फूलने लगी।

रेल, सड़क तथा औद्योगिक संस्था के बढ़ने के साथ महाजनी सभ्यता का प्रभाव शोषण के रूप में दिखाई पड़ने लगा। स्वाधीनता प्राप्ति के पहले देशवासियों को नौकरियों के अवसर कम थे, किन्तु औद्योगिक क्षेत्रों में नये-नये बैंकों के खुलने और आर्थिक जीवन में होने वाले सुधारों ने समाज का रूप बदल दल और इसका सीधा प्रभाव नगरों से गावों तक पड़ा। डॉ. श्यामाचरण दुबे लिखते हैं कि ' विकास हुआ है पर उसका लाभ निम्न वर्ग को बहुत कम मिला है। लगभग एक तिहाई जनसंख्या का जीवन स्तर सुधरा है और उसमे उपभोक्तावाद की कुप्रवृतियाँ आई है।[3] कथा साहित्य की विकास यात्रा उतनी पुरानी है जितना आधुनिक काल। सामाजिक मन का रुझान जैसे जैसे बदलता गया कहानियों के परिवेश भी बदलते गये। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में आगत स्त्री विमर्श, मुक्ति का प्रश्न, दलित विमर्श लोकतंत्र का उदय आदि कुछ ऐसे सवाल हैं जिनके आधार पर कथा साहित्य में विद्यमान अन्तर्सम्बंध का उल्लेख हिन्दी साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में आगत विचारधाराओं के संबंध में प्रसिद्ध कहानीकार भीष्म साहनी का कथन ध्यातव्य है। वे लिखते हैं "विचारधारा में सम्बंधित एक सवाल बार-बार कहानी के क्षेत्र में उठता रहा है। इसका उठाना लाजमी भी था क्योंकि तरह-तरह की विचारधाराएँ प्रबल लहरों की तरह हमारे बीच उठती रही है, भले ही वह अस्तित्ववादी विचारधारा हो अथवा समाजवादी विचारधारा अथवा कोई और विचारधारा रही हो।"[3] भीष्म साहनी जिन विचारधाराओं का उल्लेख कथा साहित्य की सोच और दिशा बदलने का कारण हुआ करती है। हिन्दी कहानियों का परिवेश कभी ग्रामीण जीवन से जुड़ा रहा तो आधुनिकीकरण के प्रभाव से कहानियां नगरीय जीवन से जुडती गयी। अल्पसंख्यकों की समस्या और विभाजन की त्रासदी भी कथा लेखन का माध्यम बनी। राष्ट्रीय

एकता और नवजागरण को नयी दिशा देने के लिए भी कहानियाँ लिखी गयीं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' इन्हीं आदर्शों पर आधारित कहानी थी। कहानी की मूल संवेदना जीवन और समाज से ग्रहण की जाती है। समसामयिक समाज का परिदृश्य जितना ही पेचीदा और समस्या से आक्रान्त रहा है कहानी या उपन्यास की विषय वस्तु भी उतना ही विसंगतियों से युक्त हुई है। हिन्दी कथा साहित्य की पहचान के क्रम में पहले उसे आधुनिकता का संवाहक, लोकजीवन से जुड़ने वाला, सामाजिक गतिविधियों का यथार्थ चित्र कहा गया और 'नयी कहानी आन्दोलन' तथा उसके समसामयिक हिन्दी उपन्यासों में इतने सारे प्रयोग किये गये कि आधुनिक हिन्दी कविता का प्रयोगवाद पीछे छूट गया। अब कथा साहित्य की 'प्रयोगधर्मिता' समीक्षा का एक ज्वलन्त विषय बन गयी है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त लेख से यह निष्कर्ष निकालना गलत न होगा कि जिस तरह से पूंजीवाद को कुछ पर्यवेक्षकों, मीडिया तथा रचनाकरों ने गरीबी दूर करने का सबसे सही रास्ता माना है वह होता तो नहीं दीख रहा। पूंजीवाद के इन दुष्परिणामों की आशंका हिन्दी के कई लेखकों व रचनाकारों द्वारा अपनी रचनाओ में व्यक्त की गई है। पूंजीवाद के इन दुष्परिणामों को व्यक्त करने में हिन्दी साहित्यकारों द्वारा प्रदत्त "दलित विमर्श, स्त्री विमर्श आदि नए विमर्श काफी हद तक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इन नए विमर्श को प्रतिपादित करने में नयी कविता व नयी कहानी के विशेष योगदान रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ब्लॉग, पनामा पेपर्स लीक (द इंटरनेशनल कोन्सोर्टियम ऑफ़ इनवेस्टिगेटिव जर्नलिस्ट्स)
2. अज्ञेय, भवन्ती --पृष्ठ-84 (डॉ. रमेश चन्द्र शाह द्वारा उधृत)
3. डॉ. श्यामाचरण दुबे, भारतीय ग्राम, पृष्ठ 235.
4. भीष्म साहनी, भटकाव -पृष्ठ 54.